© 2018 IJSRST | Volume 4 | Issue 7 | Print ISSN: 2395-6011 | Online ISSN: 2395-602X
International Journal of Scientific Research in Science and Technology

सन् 1960 के बाद के हिन्दी उपन्यासों में राजनीतिक चेतना की अभिव्यक्ति : एक समीक्षात्मक अध्ययन

डॉ0 विजय कुमार शुक्ला

एम.ए.,पीएच.डी. (हिन्दी)

बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर (बिहार)

साठोत्तर रचित हिन्दी राजनीतिक उपन्यासों ने उपन्यास शिल्प को नये आयाम दिये हैं। नूतन परिवेश को गतिशील परिप्रेक्ष्य में विसंगतियों के विभिन्न आयामों को नये दृष्टिकोण से उद्घाटित किया है जो साठोत्तर राजनीतिक उपन्यासों की महत्वपूर्ण उपलब्धि है। राजनीतिक उपन्यास शिल्प की दृष्टि से अपने आप में विशिष्टता लिए हुए हैं, विशिष्टता इस अर्थ में किसी भी स्थापित शिल्प विधि का लेबल उन पर नहीं लगाया जा सकता। कथ्य को प्रेषणीय तथा प्रभावोत्पादक बनाने के लिए अनेक उपकरणों का प्रयोग हुआ है। एक और जहाँ यथार्थ को व्यंग्यात्मक रूप में उद्घाटित करने के लिए मुहावरों, लोकोक्तियों के स्वरूप, संरचना और अर्थ प्रयोग को अपने मंतव्य के अनुरूप परिवर्तित कर उन्हें नया अर्थ प्रदान किया हैं वहीं दूसरी और अप्रस्तुतों को संदर्भमय साभिप्राय प्रयोग राजनीतिक उपन्यासों के शिल्प की विशिष्ट उपलब्धि है। शिल्प के संदर्भ में उपमान का प्रत्येक नया प्रयोग अभ्यस्त जीवन की हमारी स्थिर एवं जड़ीभूत संवेदनाओं के प्रस्तर धरातल को ध्वस्त कर अनुभूतियों के गतिशील और तरल संसार का निर्माण करता है। वह परिचित वस्तुओं को भी अपरिचित धरातल पर खड़ा कर नूतन संदर्भों से जोड़ता है। प्रतीक, फेन्टेसी और शब्दशक्ति भी शिल्प के महत्वपूर्ण अस्त्र–शस्त्र बनकर आये हैं।

राजनीतिक उपन्यासों की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि यह भी है कि इनका कथानक परंपरागत उपन्यासों से हटकर है। राजनीतिक उपन्यासों का कथ्य परंपरागत आधिकारिक एवं प्रासांगिक कथाओं की चारदीवारी में बंधकर प्रेषित नहीं हुआ, न ही कथासूत्रों की कोई तारतम्यता दिखाई देती हैं, न ही उपन्यासों में निहित छोटी–छोटी घटनाएँ अथवा प्रसंग परस्पर गुंफित हैं, तात्पर्य यह है कि स्वतंत्रता पश्चात् रचित राजनीतिक उपन्यासों में कथा की पूर्व निर्धारित ठोस रेखाएँ नहीं मिलती। यदि इन उपन्यासों में क्रम को ढूँढ़ना हो या कथागत औचित्य देखना हो तो उसे इन उपन्यासों में चित्रित विसंगतियों, अंतर्विरोधों और विषमताओं के क्रम में देखना होगा क्योंकि इन उपन्यासों का लक्ष्य परिवेश या परिस्थिति का मात्र चित्रण करना नहीं है प्रत्येक एक विसंगति क्रमशः अन्य विसंगतियों को जन्म देती हुई वर्तमान समाज या राजनीति की जड़ों को खोखला बना रही है–का भी उद्घाटन करना है। व्यंग्याभिव्यक्ति को केन्द्र मानकर उसके चारों और कथा का विधान करना इन उपन्यासों की संरचना का विशिष्ट गुण है जो इन्हें उपन्यास के परंपरागत रचना विधान और वस्तु निरूपण से भिन्न सर्वथा स्वतंत्र अस्तित्व प्रदान करता है, साथ ही रूढ़ कथानक परंपरा को गतिशीलता भी देता है। कथा के साथ–साथ ही इन उपन्यासों में चरित्र–चित्रण की भी पूर्व निर्धारित ठोस रेखाएँ नहीं मिलती अपितु चरित्र भी व्यंग्यपूर्ण परिस्थितियों के टकराव से स्वयं उभरते चलते हैं। सम्पूर्ण कथ्य को एक नवीन आख्यान शिल्प 'कमेंट्री शैली' के द्वारा रूपायित किया है जो उपन्यास साहित्य में एक नवीन मोड़ का आभास सहज ही दे जाती है।

साठोत्तर हिन्दी राजनीतिक उपन्यासों की भाषा–शैली भी परंपरागत उपन्यास भाषा शैली से सर्वथा भिन्नत्व लिए हुए है। भाषा में कथनभंगिमा, सत्यकथन की तत्परता, आक्रमणशीलता एवं आंतरिक संवेदना व्यक्त करने की अपूर्व शक्ति है। एक और परंपरागत रूप से लोकमानस में प्रचलित शब्दों को तोड़–मरोड़ कर उनमें नये अर्थों का प्रतिरूपण किया गया है तो दूसरी और अपनी बात को सत्यता और प्रभावशाली ढ़ंग से व्यक्त करने के लिए

व्याकरणिक नियमों में भी विचलन किया गया है। शब्दों और वाक्यों का चयन अत्यंत बुद्धिमतापूर्ण है। अंग्रेजी, तत्सम या अन्य भाषाओं का प्रयोग खुलकर किया गया है। लेकिन इनके प्रयोग के पीछे लेखकों का मंतव्य पांडित्य प्रदर्शन करना नहीं है वरन् आवरणों में छिपी सड़ांध को बाहर निकालने की प्रक्रिया में वे अनायास ही आ गए हैं। भाषा में चुलबुलापन है, मर्मभेदी चुटीला राजनीतिक और एक ताजगी है। कहीं सीधे प्रहार करने की प्रवृत्ति है तो कहीं दूर तक अर्थ की प्रतिध्वनि करने वाले वाक्य हैं। इन उपन्यासों में सर्वत्र एक निहायत अकाव्यात्मक व्यवहारिक भाषा का प्रयोग किया गया है। जिसमें बार–बार राजनीतिक उभरता है। इन उपन्यासों में स्वतंत्रता के बाद की प्रगति और विकास के नारों के बावजूद, निहित स्वार्थों और अनेक अवांछनीय तत्वों के आघातों के सम्मुख घिसट रही जिन्दगी के दस्तावेजों को एक नई भाषा के द्वारा प्रस्तुत किया है।

इन उपन्यासों में किन्हीं शाश्वत मूल्यों का प्रस्तीकरण नहीं हुआ है प्रत्युत परिवेशजन्य कटु स्थितियों और समाज के विघटित स्वरूप का प्रस्तुतीकरण हुआ है। स्वतंत्रता के पश्चात् सामाजिक स्थितियों में प्रसूत विसंगतियों तथा अंतर्विरोधों ने जिस असंगत समीकरण को जन्म दिया, फलस्वरूप उस भ्रष्टाचारी व्यक्ति का जन्म हुआ जो निरंतर समाज को पतन की ओर ले जा रहा है, उसी का व्यंग्यात्मक चित्रण इन उपन्यासों में मिलता है।

साठोत्तर हिन्दी राजनीतिक उपन्यास परिस्थितियों के सम्यक, व्यापक परिवेश को समेटने वाले जीवंत दस्तावेज हैं और अनेक स्तरों पर परंपरागत औपन्यासिक तत्वों को दृष्टिओझल कर सर्जनात्मक स्तर पर उपन्यास साहित्य को एक नया मोड़ देते हैं। ये उपन्यास समसामयिक यथार्थ को प्रस्तुत करने की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। इनमें विरोधाभाषपूर्ण स्थितियों का अनावरण है। यथार्थ के अनजान, अपरिचित संदर्भों को अन्वेषित करने का प्रयास नहीं है। साधारणतया जो सचेत समजस पाठक को ज्ञात है उन समस्याओं और

विसंगतियों का व्यंग्यात्मक चित्रण करके उसी पाठक को झकझोड़ने का प्रयास करते हुए, आग्रह करते हैं समाज में जो कुछ गला–सड़ा आवंछनीय है उससे समाज को मुक्त कराने का।

संदर्भ सूची

1. आखिरी सफा–मनहर चौहान, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1970.
2. काली किताब–आबिद सुरती, विवेक प्रकाशन, दिल्ली, 1975.
3. किस्ता तोता पढ़ाने का–हंसराज रहबर, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, 1971.
4. आधुनिक हिन्दी उपन्यास–2, सं. डॉ0 नामवर सिंह, राजकमल प्रकाशन, 2010.
5. आधुनिक हिन्दी उपन्यास–डॉ0 नरेन्द्र मोहन, मैकमिलन कम्पनी ऑफ इंडिया.
6. मेरा देश मेरा जीवन, पृ. 91–92.
7. उपरिवत् पृ. 127–128.